THE ECONOMIC TIMES

*Date: 18-04-17*

# Housing for all

## *Anticipate large-scale migration to new towns*

The Prime Minister's Office has reportedly asked government departments to identify unused land, especially in developed government colonies, to plan affordable housing projects. This is fine when there is scope for high density as basic amenities are already available in such places. Small plots can be consolidated to build vertically and create parking and other amenities. But it would be a mistake to plan housing for all ignoring the economic imperative of urbanisation and the inevitable migration of large numbers of Indians from villages to towns, often new towns. Even if, by some miracle of planning, subsidy and directed lending by state-owned banks, homelessness were to be abolished next year, migration would create new homelessness.As services and industry grow much faster than agriculture, creating new jobs, people will move from village to town, to take up the new jobs. These numbers would be huge. If half of India is to become urban over the next couple of decades, that would mean about 25 crore people migrating from village to town. They cannot crowd into existing towns. New ones have to be built: over some 20,000 sq km, if the density of new towns is to be around 12,000 people per sq km. India should take a page from China. Over the last few years, China has built dozens of new areas as part of a massive urbanisation drive. It now plans to build a new city Xiongan near Beijing — the special economic zone will reportedly cover an area nearly three times that of New York — to ease congestion in its capital. The need is for India to plan well ahead and manage the process of urbanisation in a way that suits our needs. The type of town planning that is envisioned will have a bearing how efficient and secure are our new cities.

Housing for all should focus on instruments that produce a plentiful stock of affordable housing units, to rent, if not quite to own, in the new towns that have to crop up to fuel India's future growth. Over investing in existing habitats and providing people with titles would be politically attractive but not of much use.

---

***Date: 18-04-17***

# President Recep Tayyip Erdogan

## *Rise of an elected sultan in Turkey*

Victory for Turkey's President Recep Tayyip Erdogan in Sunday's referendum, albeit a narrow one with 51.3% voting for his proposal for a new presidential form of government, is an example of how democratic processes can, at times, throw up undemocratic results. People voted for or against a new Constitution that abolishes the prime minister's office, centralises all executive power in the president, and empowers the president to issue decrees and appoint judges and officials without the need for ratification by any other body.

The president would be limited to two five-year terms, with the option of a third term in case of early elections. It divides power between the parliament, which legislates, and the president, who implements. This division is in keeping with the French and US models. However, the Turkish Parliament will not control details of spending or have a say over presidential appointments. In effect, the people of Turkey have voted for enthroning the president as a

term-limited sultan where the parliament serves as his court. Turkey's referendum, like the Brexit vote and the US presidential elections, reflects a deep urban-rural divide: three major cities — Ankara, Izmir and Istanbul — voted "no".The narrow yes majority is under challenge by its opponents, but is likely to prevail. Turkey's membership of the European Union recedes further into a hazy future, in consequence. Referendums are flawed, as it requires voters to decide on a very narrow question without comprehending or any scope of registering opinion on the broader implications. Erdogan has progressively centralised power, partly by force and partly by tapping into an anti-elite sentiment of those left behind. Turkey's referendum should be a wake-up call for democratic governments around the world.

---

दैनिक भास्कर

***Date: 18-04-17***

# सिर्फ जनेरिक दवाओं से ही स्वास्थ्य क्षेत्र का भला नहीं

प्रधानमंत्री मोदी सूरत में पांच सौ करोड़ के निजी अस्पताल का उद्घाटन करने गए थे लेकिन, उन्होंने वहां जो सबसे महत्वपूर्ण घोषणा की है वह स्वास्थ्य सेवा के व्यावसायीकरण के विरुद्ध है। एक तरफ उनका कहना था कि सरकार ऐसा कानून बनाने जा रही है कि डॉक्टर जनेरिक दवाएं लिखने पर मजबूर होंगे दूसरी तरफ उन्होंने यह भी कह दिया कि इस अस्पताल में कोई न आए। इस विरोधाभास में से ही शायद जनता की भलाई का कोई मार्ग निकलेगा।

पिछले तीन दशक से स्वास्थ्य सेवाओं के बढ़ते निजीकरण और व्यावसायीकरण के कारण डॉक्टरों ने ब्रैंडेड दवाओं का परचा चला रखा है। इससे दवा कंपनियों की आय बढ़ी है और डॉक्टरों का कमीशन बढ़ा है, जबकि आम आदमी परिजनों की बीमारी में अपना घर-बार गिरवी रख रहा है। अगर सरकारें जनहित में कोई कदम उठाती भी हैं तो उदारीकरण की आंधी में वह बेकार चला जाता है।

यूपीए-एक के कार्यकाल में खोले गए 125 जन औषधि स्टोरों का नाकाम होना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। बेवजह के महंगे टेस्ट, निजी अस्पतालों में भरती और ऑपरेशन के लिए मजबूर किए जाने जैसी बातें रोगियों पर बोझ बढ़ाती हैं। बहुत से डॉक्टर इसे व्यावासायिक नैतिकता के लिए घातक मानते हैं लेकिन, एक गुट की घेराबंदी के कारण वे भी मजबूर हो जाते हैं। यह सही है कि मोदी सरकार ने हाल में दिल के रोगों में इस्तेमाल होने वाले स्टेंट्स की कीमत लगभग दस गुना कम कर दी है और तकरीबन सात सौ दवाओं के दाम भी गिराए हैं। इसके बावजूद जब तक डॉक्टरों को नैतिक प्रैक्टिस करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा तब तक जनता को इन योजनाओं का उचित लाभ नहीं मिल पाता।जनेरिक दवाएं लिखने का कानून बनाने के लिए प्रधानमंत्री का वादा स्वागत योग्य है लेकिन, हमारी स्वास्थ्य सेवाओं का जिस पैमाने पर निजीकरण हुआ है और पूरा दवा उद्योग डब्ल्यूटीओ की पेटेंट प्रणाली के तहत बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मुट्ठी में कैद हुआ है। सरकार को वैश्विक दबावों को बेअसर करने के लिए देशी दवा कंपनियों को संरक्षण देना होगा और स्वास्थ्य सेवाओं को सरकारी दायरे में लाना होगा। वरना व्यावसायीकरण की बीमारी से ग्रस्त स्वास्थ्य क्षेत्र का जो भी इलाज होगा वह उसे पूरी तरह चंगा नहीं कर पाएगा।

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

*Date: 18-04-17*

# देश के भविष्य की कैसी हो तस्वीर?

***देश में इस समय दो धाराएं काम कर रही हैं। एक की सोच भविष्यदर्शी और अग्रगामी है तो दूसरी सोच पीछे की ओर खींचने वाली है। हमें इनमें अग्रसोची धारा को अपनाना होगा। विस्तार से बता रहे हैं श्याम सरन***

इन दिनों देश में दो ऐसे रुझान हैं जो आपस में ही प्रतिस्पर्धा करते नजर आ रहे हैं। इनमें से पहला है प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का तकनीकी उन्नति में गहन विश्वास और उसे देश के आधुनिकीकरण का जरिया मानना। डिजिटल इंडिया के पीछे यही संदेश है। जबकि दूसरा है हिंदू राष्ट्र को लेकर कही जाने वाली बातें। लेकिन यह दूसरा रुझान आधुनिक भारत के मूल विचार के ही विरुद्ध है। योगी आदित्यनाथ को उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनाया जाना, राम मंदिर आंदोलन को लेकर नई शुरुआत, गोवध पर प्रतिबंध को राष्ट्रीय मुद्दा बनाना और संकीर्ण व्याख्या वाले हिंदू राष्ट्र की परिभाषा के खिलाफ किसी भी बात या व्यवहार को निशाने पर ले लेना आदि, ये सभी ऐसे सामाजिक व्यवहार हैं जो डिजिटल इंडिया के समावेशी और अग्रसोची भाव के एकदम विरुद्ध हैं। यह दलील दी गई कि मोदी स्वयं आधुनिकीकरण के हिमायती हैं लेकिन उनको राजनीतिक हालात का भी ध्यान रखना होता है। अगर ऐसी बात है तो जल्दी ही यह स्पष्टïं हो जाएगा कि मौजूदा हिंदुत्व ब्रांड और तकनीकी प्रगति दोनों एक दूसरे के विरोधाभासी हैं जिनको एक साथ आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हिंदू संस्कृति और मूल्य देश के आधुनिकीकरण के सोच के खिलाफ हैं। दरअसल हिंदुत्व से जुड़े सांस्कृतिक मूल्यों की समकालीन प्रासंगिकता भी है। उसमें निरंतर सवाल करने और तलाश करने की प्रवृत्ति है। सत्य की निरंतर तलाश इसमें अहम है। इसमें असहमति और बहस को ज्ञान की खोज का मूल माना गया है। यह उस बौद्धिक परंपरा का अभिन्न अंग है। भविष्य के सफल समाज ज्ञान निर्मित करने वाले समाज होंगे और भारत इनमें अग्रणी हो सकता है। यह एक ऐसा समाज होगा जहां लोगों के दिमाग खुले होंगे और उनका नजरिया उदार होगा। हिंदू मिथकों, देवी-देवताओं की कहानियों, उनसे जुड़े साहित्य और कविता आदि तथा हिंदू मंदिरों में उत्कीर्ण चित्र एवं अन्य कलाएं, सामाजिक नैतिकता के अचानक उभर आए पैरोकारों के लिए किसी लताड़ से कम नहीं हैं।

हमारी संस्कृति में विविधता को आसानी से आत्मसात किया जाता है, यह सदियों की सहभागिता और विश्व-नागरिकता, विश्व बंधुत्व की उस अवधारणा पर आधारित है जिसे आज की दुनिया में बचाने और फलने-फूलने देने की जरूरत है। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण के क्षय से जूझ रहे विश्व को ऐसे भारत से प्रेरणा मिलेगी जो प्रकृति को मां मानने की अपनी आस्था पर टिका हो और जो मानवीय लालच पर विजय की कामना रखता हो। ऐसे में कहा जा सकता है कि हिंदुत्व से जुड़े मूल्य देश के आधुनिकीकरण में भूमिका निभा सकते हैं। इनकी बदौलत संकटग्रस्त विश्व में भारत मानवता और सामंजस्य का केंद्र बनकर उभर सकता है। लेकिन यह सब उस संकीर्ण विचारधारा के साथ नहीं हो सकता जिसे हम आज देख रहे हैं। सामाजिक स्तर पर दिख रहे प्रतिगमन का आधुनिकीकरण पर नकारात्मक असर हो रहा है। भारतीय संविधान की रचना करने वालों को पता था कि भारतीय समाज में रची-बसी मजबूत सामंती प्रवृत्तियां लोकतांत्रिक समाज के उदय का प्रतिरोध करेंगी। इस वजह से भी उन्होंने संविधान में नागरिक केंद्रित अधिकारों और दायित्वों की व्यवस्था की और हर नागरिक को मूलभूत और समान अधिकार दिए। भले ही वह किसी भी जाति, धर्म या लिंग का हो। लेकिन इन दिनों सामंतवाद फिर से जोर मार रहा है। जिन लोगों के पास प्रतिनिधित्व है वे खुद को ऐसी वरीयता चाहते हैं जो आम नागरिकों के लिए उपलब्ध नहीं है। नौकरशाही भी इस मामले में बहुत पीछे नहीं है। नौकरशाह

अक्सर शासकों की तरह व्यवहार करते हैं। राजनेता पैर छूने और दंडवत प्रणाम की व्यवस्था ने इस बात का मखौल ही उड़ा दिया है कि एक लोकतांत्रिक नेता को जनता का सेवक होना चाहिए। एक स्वतंत्र न्यायपालिका संविधान की रक्षक है। परंतु वह भी अक्सर वही सामाजिक पूर्वग्रह दिखाती है जिन्हें खत्म करना उसका दायित्व है। इसके लिए मौजूदा राजनीतिक प्रतिष्ठान को उत्तरदायी नहीं ठहराया जाना चाहिए। बल्कि यह सडऩ बहुत पहले शुरू हो गई थी।अगर भ्रष्टाचार को खत्म करने के साथ-साथ हमारे राजनीतिक वर्ग में घर कर चुकी सामंती मानसिकता को खत्म करने की दिशा में भी पेशकदमी हो पाती तो देश के आधुनिकीकरण का काम सही मायनों में आगे बढ़ता। हमारे सामने एक ऐसा समाज बनने का खतरा उत्पन्न हो गया है जो बंटा हुआ और असमान हो। जहां शीर्षस्थ लोग अन्य नागरिकों की कद्र ही न करते हों और उनकी गरीबी और निराशा से बेजार हों। ऐसे में तमाम विद्रोहों की आशं◌ाका है।देश के आधुनिकीकरण के क्रम में तकनीक को अपनाने की आवश्यकता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी आधुनिक तकनीक और डिजिटल अर्थव्यवस्था के बढ़ावा देने के लिए जो प्रयास कर रहे हैं वे सराहनीय हैं। पहले भारतीय नेता हैं जो आर्थिक सुधारों और उदारीकरण के पक्ष में खुलकर बात करते हैं। वह अपने पूर्ववर्तियों की तरह चुपके-चुपके सुधारों को अंजाम देने के हिमायती नहीं हैं।उन्होंने विदेशी निवेश का स्वागत किया है और वह कारोबारी सुगमता में सुधार के लिए प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने वित्तीय समावेशन और प्रत्यक्ष नकदी हस्तांतरण को बढ़ावा देने की दिशा में उचित प्रयास किए हैं। उन्होंने जरूरतमंद तक योजनाएं पहुंचाने के लिए जो पहल की हैं उनका स्वागत किया जाना चाहिए। बहरहाल यह उत्साहित करने वाला रुझान अपनी जगह है और देश के समाज में बढ़ता ध्रुवीकरण अपनी जगह। देश में पंथ आधारित और सांप्रदायिक भेद बढ़ रहा है और हिंदुत्व के कुछ स्वयंभू ठेकेदारों द्वारा तय मानकों को दूसरों पर थोपने का प्रयास किया जा रहा है। इसकी पूरी अवधारणा अत्यंत संकीर्ण है। इसका समृद्ध हिंदू विरासत से कोई लेनादेना नहीं है। हिंदुत्व की विरासत में अन्य सांस्कृतिक धाराओं और परंपराओं के साथ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व शामिल है। यह भारतीय व्यवहार को उजागर करता है। भारत की बौद्धिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक विरासत के बारे में गर्व करने को काफी कुछ है। यही वह विरासत है जिसकी हमें नए सिरे से तलाश करनी होगी और उसे सबके सामने लाना होगा। इसका उन हरकतों से कोई लेनादेना नहीं है जो हमें आजकल देश की सड़कों पर देखने को मिल रही हैं। मिसाल के तौर पर इन दिनों गो संरक्षण का दावा करने वाले गुंडे सड़कों पर मासूम देशवासियों के साथ मारपीट कर रहे हैं, उन्हें जान से भी मार रहे हैं। अगर इन नकारात्मक हरकतों को बढऩे दिया गया तो आज नहीं तो कल ये आधुनिकता को पीछे धकेल ही देंगे। एक साथ दो घोड़ों की सवारी करना काफी कठिन है। भले ही वे एक दिशा में दौड़ रहे हों, जबकि यहां तो मामला ही उलटा है, दोनों विपरीत दिशा में दौड़ रहे हैं। देश के भविष्य को बचाने के लिए जरूरी है कि आगे जा रहे घोड़े को पीछे की ओर जा रहे घोड़े से मुक्त किया जाए और उसे अबाध गति से दौडऩे दिया जाए।

---

नवदुनिया

***Date: 18-04-17***

# वैश्विक अपेक्षाओं के लिए तैयार

ऐसे दौर में जब भारत पाकिस्तान के उन्मादी रवैये से एक बार फिर आहत हुआ है, तब देश में हुए दो विदेशी राष्ट्रप्रमुखों के हालिया दौरे भारतीय कूटनीति की धीरे-धीरे विकसित हो रही नई प्राथमिकताओं को रेखांकित कर रहे हैं। दरअसल भारत में इन दिनों नौसेना के पूर्व अधिकारी कुलभूषण जाधव का मामला गरमाया हुआ है, जिन्हें पाकिस्तान की सैन्य अदालत ने आनन-फानन में मौत की सजा सुनाई है। इस पर उपजते आक्रोश की वजह से बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना और ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री मैल्कम टर्नबुल की भारत यात्रा के महत्व

पर ज्यादा चर्चा नहीं हो सकी। एक तरह से देखा जाए तो ये दोनों दौरे भारत की उभरती वैश्विक ताकत की छवि को न केवल नए सिरे से मजबूत कर रहे हैं, बल्कि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में उसकी बढ़ती भूमिका का भी संकेत दे रहे हैं।

अब वैश्विक स्तर पर भारत से अपेक्षा की जा रही है कि वह एक नई किस्म की वैश्विक भूमिका अख्तियार करे। नई दिल्ली भी ये भूमिका निभाने के लिए तैयार नजर आती है। सुरक्षा प्रदाता के रूप में ही भारत की भूमिका नई दिल्ली-ढाका संयुक्त घोषणापत्र में नजर आती है जिसमें दोनों देशों के बीच अधिक से अधिक सैन्य प्रशिक्षण और आदान-प्रदान पर जोर दिया गया है। हसीना की दिल्ली यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच मुख्य आकर्षण रक्षा संबंध ही था। इस बार इसमें रक्षा ढांचे पर मेमोरेंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग यानी सहमति पत्र और बांग्लादेशी सेना की रक्षा खरीद के लिए 50 करोड़ डॉलर की ऋण व्यवस्था को भी शामिल किया गया जो भारत की सीमा से लगने वाले किसी भी देश के साथ इस मद में अब तक की सबसे बड़ी कर्ज पेशकश है। इस ऋण व्यवस्था की खास बात यही है कि बांग्लादेश अपनी जरूरत का रक्षा साजोसामान भारतीय कंपनियों से खरीदने के लिए बाध्य नहीं होगा। यह हसीना सरकार में भरोसा बहाल करने का भारतीय तरीका है कि वह नई दिल्ली के हितों को चुनौती नहीं देंगी।

भारत अपने आर्थिक विकास में भी सहयोगियों को साझेदार बनाने के लिए तैयार दिख रहा है। इसने मोंगला, चटगांव और पीएरा बंदरगाहों के मरम्मत कार्य सहित बुनियादी ढांचे से जुड़ी तकरीबन 17 परियोजनाओं के विकास के लिए मौजूदा 2.8 अरब डॉलर के अतिरिक्त बांग्लादेश के लिए 4.5 अरब डॉलर के कर्ज की व्यवस्था की है। दक्षिण एशिया में संपर्क बहाली यानी कनेक्टिविटी की महती जरूरतों को देखते हुए भारत बीबीआईएन यानी बांग्लादेश-भूटान-इंडिया-नेपाल मोटर वाहन समझौते को समयपूर्व लागू करने पर जोर दे रहा है, जिसका मकसद इन दक्षिण एशियाई देशों में सड़कमार्ग से निर्बाध आवाजाही सुनिश्चित करना है। इसी कड़ी में कोलकाता और खुलना के बीच बस व ट्रेन सेवा भी शुरू की गई है। अंतरदेशीय जलमार्ग चैनल को फिर से बहाल करने की योजना पर भी काम हो रहा है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी व शेख हसीना ने द्विपक्षीय संबंधों को नया आकार देने में दिलचस्पी ली है। इसके लिए मोदी अपनी राजनीतिक पंूजी का बढ़-चढ़कर उपयोग कर रहे हैं। 2015 में उन्होंने दशकों पुराने सीमा विवाद को खत्म कराने के लिए भूमि सीमा समझौता संपन्न् कराया था और अब तीस्ता नदी जल बंटवारे से जुड़े विवाद के निपटारे के लिए भरसक प्रयास कर रहे हैं। शेख हसीना भी भारत की चिंताओं को दूर करने की लगातार कोशिश करती रही हैं। बांग्लादेश अलगाववादी भावना से ग्रस्त भारतीय उग्रवादी संगठनों जैसे उल्फा और नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड से निपटने के लिए गंभीर कदम उठा रहा है। यही नहीं हूजी, जमात-उल मुजाहिदीन बांग्लादेश और हरकत-उल अंसार जैसी कट्टरपंथी ताकतों से पार पाने के लिए इन दिनों भारत और बांग्लादेश के बीच गजब का तालमेल दिखाई दे रहा है।

हालांकि नई दिल्ली-ढाका के बीच मजबूत रिश्ते की अपनी प्रतिबद्धता के लिए हसीना को घरेलू स्तर पर भारी विरोध का सामना भी करना पड़ रहा है। दोनों के बीच विभिन्न् क्षेत्रों में 22 समझौतों पर दस्तखत होने के तुरंत बाद विपक्षी नेता खालिदा जिया ने हसीना पर सत्ता में बने रहने के लिए बांग्लादेश को भारत के हाथों बेचने तक का आरोप लगाया। बहरहाल, भारत के आकार व विस्तार को देखते हुए अपने पड़ोसी देशों के साथ हेल-मेल रखना उसके लिए बेहद जरूरी है। हालांकि दक्षिण एशिया में जहां दिल्ली के इरादों को लेकर गहरा संदेह व्याप्त है, ऐसे में उसे हमेशा फूंक-फूंककर कदम रखने पड़ते हैं।भारत अपनी कूटनीति को धार देने के लिए वृहत हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भी अपनी प्रतिबद्धताओं को विस्तार दे रहा है। इस कड़ी में भारत को हाल के वर्षों में जिस तरह से जापान, ऑस्ट्रेलिया, वियतनाम, मलेशिया और इंडोनेशिया जैसे देशों के साथ साझेदारी कायम करने में सफलता मिली है, वह इस क्षेत्र में भारत की बढ़ती भूमिका और मौजूदगी का प्रमाण है। बीते हफ्ते संपन्न् हुआ ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री का दिल्ली दौरा भी दर्शाता है कि वैश्विक स्तर पर भारत को एक मजबूत व विश्वसनीय क्षेत्रीय ताकत के रूप में मान्यता मिलने लगी है। दोनों देशों ने नौवहन और ओवरफ्लाइट यानी समुद्र के ऊपर उड़ान भरने की स्वतंत्रता, निर्बाध वैध कारोबार के लिए समुद्री सहयोग को बढ़ावा देने और यूएनसीएलओएस (यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन ऑन द लॉ ऑफ द सी) सहित अन्य अंतरराष्ट्रीय कानूनों के

तहत सभी समुद्री विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से हल करने पर सहमति जताई है।इन संबंधों के केंद्र में भी एक बार फिर रक्षा सहयोग ही है, जिसके तहत इस साल के अंत में विशेष बलों के संयुक्त अभ्यास और प्रथम द्विपक्षीय सैन्य अभ्यास सहित 2018 में बंगाल की खाड़ी में ऑसिनडेक्स यानी भारत-ऑस्ट्रेलिया नौसेना **अभ्यास** के नाम से द्विपक्षीय समुद्री अभ्यास शुरू करने जैसी जुगलबंदी का फैसला किया गया है। दोनों देशों को अपनी बढ़ती सुरक्षा साझेदारी को **आर्थिक** महत्व देने के लिए अब जल्द से जल्द व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते (सीईसीए) के पहलुओं को भी प्राथमिकता देनी चाहिए।एशिया में उदार अर्थव्यवस्था और सुरक्षा व्यवस्था के प्रवर्तक देश के रूप में भारत के उभार की संभावनाओं के बारे में भारी प्रचार के बावजूद इस क्षेत्र में कुछ ऐसा घटित हो रहा है जो नई दिल्ली की **क्षेत्रीय** एवं वैश्विक ताकत की भूमिका को विस्तार दे रहा है। ऐसे समय में जब वाशिंगटन की नीति में अस्पष्टता बरकरार है और बीजिंग मौजूदा **विश्व** व्यवस्था के आधार को चुनौती दे रहा है, तब क्षेत्र और क्षेत्र के बाहर समान सोच वाले देशों के साथ सहयोग भारत को विश्वसनीय क्षेत्रीय **मध्यस्थ** शक्ति के रूप में उभारने में मददगार होगा। यह भारत पर निर्भर है कि वह इस अवसर को कैसे अपने पक्ष में भुनाता है। शायद यही वजह है कि बांग्लादेश और ऑस्ट्रेलिया जैसे देश उस पर भरोसा करते दिख रहे हैं।

***(लेखक लंदन स्थित किंग्स कॉलेज में अंतरराष्ट्रीय संबंधों के प्राध्यापक हैं)***

---

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

***Date: 17-04-17***

# Just tinkering

## *Food minister's suggestion of regulating portion sizes in restaurants trivialises the problem of food wastage*

Union Food and Consumer Affairs Minister Ram Vilas Paswan's concern over food wastage shows that his heart is in the right place. But his recent statements raise questions about his understanding of an extremely serious matter. In an interview to this paper last week, the minister said: "At weddings and restaurants, a large amount of food is wasted at a time when the poor have to struggle for food. This wastage has to be stopped." Paswan wants restaurants to specify portion sizes to enable customers to order the right amount to reduce food wastage. The suggestion to micro-manage how much people eat in restaurants trivialises a long-standing problem.

Studies have pointed out that staggering amounts of food are wasted due to inadequate or flawed storage and transportation facilities. Barely two weeks before the minister's comments on food wastage, Minister of State for Food Processing Industry Sadhvi Niranjan Jyoti told the Lok Sabha that India has a gap of 3.28 million tonnes of cold storage facilities for fruit and vegetables. A study submitted in 2015 by the agriculture ministry's harvest research body, the Central Institute of Post-Harvest Engineering and Technology (CIPHET), found that 67 million tonnes of food is wasted in the country every year. "Each operation and handling stage (after the harvest) results in some losses. Thus a huge quantity of agricultural production is reduced from the food chain," the study noted. The food lost could feed people in the state of Bihar for an entire year. The value of this food is more than Rs 92,000 crore, two-thirds of the cost to feed the country's 600 million poor under the National Food Security Act (NFSA). In 2013, the Global Food Waste Not Want Not Report found that the wheat wasted in India due to want of storage and production facilities is almost equivalent to the entire production of Australia. In 2013-16, 46,658 tonnes of foodgrains went bad in Food Corporation of India warehouses across

the country, while another 143 tonnes were reported stolen — enough to feed eight lakh people under the NFSA.The solutions range from educating farmers about better post-harvesting technologies to creating better storage facilities, locally-specific farm mechanisation to standardising farm operations and ensuring better transport facilities for food and food products to eating what is produced locally. There are also civil society and business initiatives of various types — including by individual restaurants and restaurant associations — to reduce food waste. However, in spite of all this, India ranks a lowly 97 out of 118 countries in the Global Hunger Index. It is unfortunate that instead of introspecting about where things have gone and addressing the problems in substantive ways, the government is thinking of tinkering with food portions in restaurants.

---

THE HINDU

***Date: 17-04-17***

# Justice Karnan's outrageous defiance

## *Justice C.S. Karnan's continuance as a judge makes a mockery of the rule of law*

He has brought the judiciary into disrepute, flouted all norms of judicial conduct and thrown an open challenge to the Supreme Court. His continuance as a judge makes a mockery of democracy and the rule of law. The case of Justice C.S. Karnan is no longer just strange or curious; it is disgraceful and intolerable. The Calcutta High Court judge's 'order' summoning the Chief Justice of India and six judges of the Supreme Court to his 'residential court' to face punishment under the Scheduled Castes and Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989, is yet another unacceptable affront to the apex court's authority. Justice Karnan's conduct goes against the assurance he gave the Chief Justice of India last year that he would foster a "harmonious attitude towards one and all". At that time, he had expressed regret for passing a *suo motu* order staying his own transfer from the Madras High Court to the Calcutta High Court, admitting that it was an "erroneous order" passed due to "mental frustration, resulting in loss of mental balance". The latest instance of his misconduct is in response to the contempt proceedings initiated against him by the Supreme Court for denigrating the judicial institution by making sweeping allegations, in a letter to the Prime Minister, against several judges. He had appeared in person before a seven-judge Bench on March 31, and was given four weeks to respond to the charge of contempt of court. It is quite apparent that he is only further damaging his own case.

The recalcitrant judge has a long history of alleging corruption among other judges, accusing some of caste discrimination against him, and often invoking his caste identity to take complaints against his peers and even Chief Justices to the National Commission for Scheduled Castes. In the past, he has passed judicial orders on matters pertaining to the selection of judges, even after being barred by a Division Bench from hearing them. He had once barged into a court during a hearing, and on another occasion into the chamber of the Madras High Court Chief Justice, "hurling a volley of invectives". Public criticism, transfer to another High Court, being hauled up for contempt and being denied judicial work — nothing seems to restrain him. The only option left is impeachment, but it is a political process involving Parliament and is something he himself may want so he can give full play to his alleged grievances, including those based on his caste. Justice Karnan's case vividly exposes the inadequacies of the collegium system of appointments. Nothing makes a better case for the infusion of greater transparency in the selection of judges than his current presence in the High Court.

---

***Date: 17-04-17***

# Army personnel using 'human shield': The rights thing

## *The Army must act quickly on reports of the use of a human shield by its personnel*

Reports of Army personnel using a young man as a human shield in Jammu and Kashmir's Budgam district must not only invite a swift inquiry and justice, but also compel the Army and the government to issue clear statements on the unacceptability of this shocking practice. A short video clip that went viral on Friday showed a man tied to the bonnet of an Army jeep being driven through the streets, as it escorted election officials on polling day in the Srinagar parliamentary constituency. Heard in the clip, on what appears to be the public address system of the vehicle, are the threatening words, "*Paththar bazon ka yeh haal hoga* (this shall be the fate of stone-pelters)." The man has subsequently been identified as Farooq Dar, a 26-year-old who embroiders shawls, and the Army personnel are said to belong to the 53 Rashtriya Rifles. There is a lack of total clarity on exactly what happened, including how long Mr. Dar was tied to the bonnet — he says he was subjected to this humiliation as the vehicle passed through 10 to 12 villages, while Army sources have been quoted as saying it was for just about 100 metres. But such questions relating to distance are hardly the issue. The larger point here is that if he was indeed forcibly strapped on to the bonnet, it amounts to an instance of gross human rights violation, and must officially be called out in clear terms.

Human shields have often been used cynically by terrorist organisations — the Islamic State uses civilians as shields in its battles, and the LTTE used them in the closing stages of the civil war in Sri Lanka. To use a person as a human shield is to abduct him, to hold him hostage, and to potentially put him in harm's way. There is no argument that the Army, which is caught in a situation in which terrorists attempt to blend in with the civilian population, is fighting a difficult and unenviable battle. But the difficulties in fighting a hybrid war do not constitute a justification for the use of human shields, which is categorised as a war crime by the Geneva Conventions. Only a couple of days before the human shield video surfaced, another one — which showed CRPF personnel exercising admirable restraint as they were pushed and beaten by youth in Kashmir — had gone viral. It is ironic and hypocritical that some of those who commended such self-control are now defending the indefensible use of a human shield. It is true that the polling in Srinagar was held in a hostile environment, the abysmally low 7% turnout being a reflection of local alienation as well as intimidation by militants to keep people away from voting. But the security bandobast was aimed precisely to reassure the people and not to force an 'us vs them' binary. The Army must expedite the inquiry and act against the erring personnel where warranted. Its response must also publicly affirm its Code of Conduct *vis-à-vis* civilians, which includes the clause, "Violation of human rights... must be avoided under all circumstances, even at the cost of operational success". To do any less would amount to being a party to rights violations.

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 17-04-17

# तंबाकू पर एक नई बहस

तंबाकू कंपनियों में सरकार की क्या सीधी या परोक्ष रूप से कोई हिस्सेदारी होनी चाहिए? यह एक ऐसा सवाल है, जिसे लेकर कुछ लोग बंबई हाईकोर्ट पहुंचे हैं, जिनमें टाटा समूह के ट्रस्टीज भी शामिल हैं। यह मामला आईटीसी लिमिटेड से जुड़ा है, जिसे 'मुख्यत:' एक तंबाकू कंपनी माना जाता है। हालांकि अभी अदालत को यह तय करना है कि वह इस मामले को स्वीकार करती है या नहीं?आईटीसी कोलकाता-स्थित कंपनी है, जो मूल रूप से एक तंबाकू कंपनी ही है। हालांकि इसने सफलतापूर्वक दूसरे कारोबारों में भी अपने पांव पसारे हैं, खासकर कन्फेक्शनरी (मिंटो और कैंडीमैन ब्रांड की टॉफियां बनाने) और पैकेज वाले उपभोक्ता वस्तुओं में। वैसे, कंपनी के एक एग्जीक्यूटिव (कार्यकारी पदाधिकारी) ने इसका पुरजोर विरोध किया था कि मिंट ने आखिर कैसे आईटीसी को एक तंबाकू कंपनी बताया? मगर असलियत यह है कि आज भी इसकी 60 फीसदी कमाई तंबाकू कारोबार से होती है, और 31 दिसंबर, 2016 को खत्म हुई तिमाही में कुल लाभ का 75 प्रतिशत इसने इसी कारोबार से कमाया है। लिहाजा याचिकाकर्ताओं ने यदि आईटीसी को एक तंबाकू कंपनी बताया है, तो वह गलत नहीं लगता।

तंबाकू सेहत का कितना बड़ा दुश्मन है, इस पर किसी बहस की जरूरत नहीं है। मगर देश की इस सबसे बड़ी सिगरेट कंपनी को हमेशा इस बात की नाराजगी रही है कि सरकार बीड़ी या तंबाकू के दूसरे उत्पादों पर टैक्स क्यों नहीं लगाती? मेरा मानना है कि यह बिल्कुल अलग मसला है, क्योंकि सीमा पार तस्करी सिगरेट की ही होती है। लिहाजा यहां सवाल यह है कि क्या सिगरेट नुकसानदेह है? और इसका जवाब स्वाभाविक तौर पर 'हां' ही होगा।सरकार प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आईटीसी में एक महत्वपूर्ण हिस्सेदारी रखती है। पांच बीमा कंपनियों और एक कथित द स्पेसिफाइड अंडरटेकिंग ऑफ यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (एसयूयूटीआई) के माध्यम से सरकार की आईटीसी में 32 फीसदी हिस्सेदारी है। बंबई हाईकोर्ट में याचिका दायर करने वाले लोगों का भी यही सवाल है कि क्या सरकार को ऐसा करना चाहिए?

आईटीसी को चलाने की जिम्मेदारी एक बोर्ड के ऊपर है, ठीक एक दूसरी निजी कंपनी लार्सन ऐंड टुब्रो (एलऐंडटी) की तरह, जिसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरकार की महत्वपूर्ण हिस्सेदारी है। भारतीय कानून के मुताबिक, इन कंपनियों के प्रमोटर्स नहीं हो सकते; न भारत में और न ही विदेशों में। इनकी कमान प्रोफेशनल मैनेजरों के हाथों में होती है, जो शेयर बाजार के माध्यम से कंपनी के शेयर खरीदते हैं। इन दोनों कंपनियों में सरकार की हिस्सेदारी यूएस-64 के दौर से देखी जा सकती है। यूएस-64 असल में रिर्टन की गारंटी देने वाला एक म्यूचुअल फंड था, जिसका संचालन यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (यूटीआई) करता था। मगर 2000 के दशक की शुरुआत में यह आर्थिक मुश्किलों में फंस गया। चूंकि यूनिटों की कीमतें गारंटी रिटर्न से कम हो गईं, इसलिए सरकार ने इसके शेयर ले लिए। इनमें से कुछ शेयर तो अब इतिहास बन चुके हैं।इन दोनों कंपनियों में सरकार की हिस्सेदारी का यह फायदा हुआ कि इन पर किसी देसी या विदेशी कॉरपोरेट घराने का कब्जा न हो सका। मसलन, सरकारी हिस्सेदारी का ही नतीजा था कि 1980 के दशक के अंत और 1990 के दशक की शुरुआत में एलऐंडटी का अधिग्रहण रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड नहीं कर सकी, जबकि धीरूभाई अंबानी के पास कुछ दिनों तक इस कंपनी की कमान भी रही और वह कंपनी के चैयरमैन भी थे। आखिर यह सब कैसे और क्यों हुआ, यह एक लंबी और दिलचस्प कहानी है, जिसकी चर्चा फिर कभी करूंगा। फिलहाल, एलऐंडटी की तरह सरकार की हिस्सेदारी के कारण ही ब्रिटिश अमेरिकन टोबैको कंपनी आईटीसी पर कब्जा न जमा सकी, जबकि विभिन्न कंपनियों के माध्यम से उसके 30 फीसदी शेयर आईटीसी में रहे हैं।समय-समय पर ऐसी बातें भी उठती रही हैं कि सरकार एसयूयूटीआई के माध्यम से इन दोनों कंपनियों की अपनी हिस्सेदारी बेच रही है, मगर आईटीसी मामले में ऐसे प्रस्ताव हमेशा इस चेतावनी के साथ आते दिखते हैं कि ब्रिटिश

अमेरिकन टोबैको को इन शेयरों की बोली नहीं लगाने दी जाएगी। ऐसा होना भी चाहिए, क्योंकि हमें आईटीसी और एलऐंडटी जैसी बोर्ड प्रशासित और प्रोफेशनल तरीके से संचालित कंपनियों की और अधिक जरूरत है।

दिलचस्प है कि आईटीसी को दूसरे तरीके से भी सरकारी सुरक्षा मिलती है। दरअसल, हमारी हुकूमत तंबाकू उत्पादों के निर्माण में प्रत्यक्ष विदेश निवेश की अनुमति नहीं देती, और पिछले वर्ष मीडिया रिपोर्टों में कहा भी गया था कि तंबाकू व्यवसाय में फ्रेंचाइजिंग, प्रबंधन से जुड़े अनुबंध और तकनीकी सहयोग की अनुमति देने पर वाणिज्य मंत्रालय कोई विचार नहीं कर रहा है। ऐसा करने के पीछे सरकार के जो तर्क थे, वे स्थानीय उद्योगों की सुरक्षा नहीं, बल्कि तंबाकू के नुकसानदेह प्रभाव थे। सरकार की इस सोच की तारीफ करनी चाहिए।मेरा मानना है कि मुंबई में दायर याचिका को भी हमें इसी संदर्भ में देखना चाहिए। कानूनी चश्मे से देखें, तो सार्वजनिक बीमा कंपनियों या दूसरी सरकारी एजेंसियों द्वारा आर्थिकी या निवेश के तहत किसी दूसरी कंपनी में हिस्सेदारी लेने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता है। मगर संभव है कि अदालत इस मामले को एक अलग नजरिये से देखे। वह नजरिया जाहिर तौर पर लोगों के स्वास्थ्य की सुरक्षा का होगा। आखिर सरकार भी तो इसी तर्क के साथ तंबाकू कारोबार में विदेशी निवेश के अपने प्रतिबंध को जायज ठहराती है। बहरहाल, अदालत जो भी फैसला सुनाती है, उसे सरकार को मानना ही होगा; फिर चाहे इसके लिए उसे अपने दिल पर पत्थर ही क्यों न रखना पड़े।

---

***Date: 17-04-17***

# रोबोट का खोट

अक्सर जब यह सवाल पूछा जाता है कि अच्छा रोबोट कैसा हो, तो जवाब हमेशा यही मिलता है कि अच्छा रोबोट बिल्कुल इंसान जैसा होना चाहिए। एक तरफ तो हम यह मानते हैं कि रोबोट बिना थके ज्यादा काम करने वाला, ज्यादा क्षमता वाला और ज्यादा उत्पादक हो, दूसरी तरफ हमारी सोच यह रहती है कि उसकी अक्ल, उसकी समझदारी और उसकी ऐंद्रिक क्षमता बिल्कुल इंसानों जैसी हो। यहां तक कि हम चाहते हैं, रोबोट ऐसा हो, जो हमारी पसंद-नापसंद को ही नहीं, हमारे सुख-दुख को भी पूरी तरह समझ सके। ऐसे रोबोट बनाने की कोशिश भी चल रही है, जो हमारे लिए गीत-संगीत तैयार कर सकें, हमारे लिए कहानियां और कविताएं लिख सकें। ऐसे रोबोट बनाने की कोशिश भी हो रही है, जो हमारी तरह हंस-बोल और चल-फिर सकें। ज्यादा क्षमता और ज्यादा उत्पादकता वाले रोबोट तो हमने बहुत पहले ही तैयार कर लिए थे। लेकिन बाकी की इंसानी आदतों वाले रोबोट को बनाना इतना आसान नहीं है। इसमें एक हद तक ही सफलता मिली है, हालांकि उससे आगे की कोशिशें जारी हैं। लेकिन यहीं पर एक सवाल खड़ा होता है कि अगर रोबोट एकदम हमारी तरह ही होंगे, तो क्या उनके पूर्वाग्रह भी वैसे ही होंगे, जैसे हमारे होते हैं? तकनीकी जवाब कहता है- नहीं, क्योंकि रोबोट का मशीनी दिमाग गणित पर आधारित तर्कों को समझता है, इस सबमें पूर्वाग्रहों के लिए कोई जगह नहीं है। लेकिन रोबोट का अभी तक का व्यवहार कुछ और ही बताता है। इसे लेकर ज्यादातर अध्ययन यही बताते हैं कि रोबोट में लिंग और रंग से जुड़े जबरदस्त दुराग्रह होते हैं, और ये दुराग्रह उसने हमसे ही सीखे हैं।

दुराग्रह का सबसे अच्छा उदाहरण है गूगल ट्रांसलेट, एक ऐसा मशीनी ऑनलाइन सहायक, जो एक भाषा से दूसरी में अनुवाद करता है। इसमें आप अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद कीजिए। इसमें आप अगर लिखें- डॉक्टर कम, तो इसका हिंदी अनुवाद होगा- डॉक्टर आते हैं। गूगल ट्रांसलेट यह मान चुका है कि डॉक्टर कोई पुरुष ही होगा, इसलिए वह डॉक्टर आती हैं कभी नहीं लिखेगा। अब अगर आप लिखें- हाउसकीपर कम। आपको अनुवाद मिलेगा- नौकरानी आती है, क्योंकि वह मानता है कि हाउसकीपर नौकर नहीं हो सकता। दरअसल, यह गूगल ट्रांसलेट के अपने गणितीय तर्कों की कोई भाषा नहीं है। यह वह भाषा है, जो उसने हमसे ही सीखी है। एक दूसरा मामला ऐसी सौंदर्य प्रतियोगिता का है, जिसमें निर्णायक का काम एक कंप्यूटर को करना था। इस प्रतियोगिता को माइक्रोसॉफ्ट के सहयोग से यूथ लेबोरेटरी नाम के संगठन ने आयोजित

किया था। इसके लिए दुनिया भर से हजारों की संख्या में प्रविष्टियां आईं। और अंत में जब 44 विजेताओं की पहली सूची सामने आई, तो एक को छोड़कर बाकी सभी विजेता श्वेत थे। चुने गए लोगों में एशियाई लड़कियां बहुत ही कम संख्या में थीं।जाहिर है, इस मामले में दोष रोबोट का नहीं, उनकी प्रोग्रामिंग करने वालों का या उन्हें प्रशिक्षित करने वालों का है। रोबोट उनसे वैसे ही पूर्वाग्रह ग्रहण करते हैं, जैसे बच्चे अपने अभिभावकों, अध्यापकों और समाज से ग्रहण करते हैं। रोबोट वैसे ही हमारी सामाजिक सोच का एक नतीजा हैं, जैसे हमारी हर नई पीढ़ी होती है। जिन चीजों को हम अपने समाज से, अपने दिमाग से नहीं हटा सके, उनसे अपने रोबोट को कैसे बचा सकते हैं? यह संभव नहीं है कि हम लिंग-भेद और रंग-भेद को मानते रहें और अपने रोबोट को पूरी तरह समतावादी बना दें। जाहिर है कि अगर हमें अच्छे और अच्छी सोच वाले रोबोट बनाने हैं, तो पहले अपने समाज को अच्छी सोच वाला बनाना होगा, इसका कोई शॉर्टकट नहीं है।

---

राष्ट्रीय सहारा

***Date: 17-04-17***

# किस कीमत पर जीत !

## *तो फारुक अब्दुल्ला श्रीनगर संसदीय क्षेत्र से लोक सभा सदस्य निर्वाचित हो गए.*

जरा सोचिए, जिस चुनाव में कुल 12 लाख 61 हजार मतदाताओं में से केवल 89 हजार 883 यानी 7.13 प्रतिशत ने मत डाला हो उसे किस तरह तरह का चुनाव कहा जाएगा? इसमें 48 हजार 554 मत पाकर अब्दुल्ला अपने प्रतिद्वंद्वी पीडीपी उम्मीदवार से 10 हजार मतों से अगर विजयी हो गए तो इसे किस तरह की विजय माना जाए; यह प्रश्न भी हम सबको लंबे समय तक मथता रहेगा. कुल मतों के करीब 4 प्रतिशत से थोड़ा ज्यादा मत पाने वाला उम्मीदवार विजय हुआ. यह हमारी बेहतरीन मानी जाने वाली चुनाव प्रणाली की कमजोरी है, जिसमें मतदान चाहे जितना प्रतिशत हो, एक भी मत से कोई आगे है तो वह निर्वाचित हो जाएगा. ऐसे फारुक कह रहे हैं कि वह अलगाववादियों को बातचीत का निमंत्रण देने वाले हैं, वे किस हैसियत से ऐसा कह रहे हैं. जबकि न प्रदेश में उनकी सरकार है न केन्द्र में. लेकिन जिस तरह उन्होंने चुनाव प्रचार किया उसे देखते हुए इसमें आश्चर्य का कारण नहीं है. उन्होंने जमकर अलगाववादियों का तुष्टिकरण करने की कोशिश की. उन्हें कहा कि आप हमें अपना दुश्मन मत मानो. पत्थरबाजों को उन्होंने वतनपरस्त कहा. यह भी कहा कि वह कश्मीर समस्या के हल के लिए लड़ रहे हैं और भूखे रहकर भी पत्थर चलाएंगे. यह सीधे-सीधे भारत की नीतियों के विरुद्ध था. एक ऐसा व्यक्ति, जो तीन बार प्रदेश का मुख्यमंत्री तथा एक बार केन्द्र में मंत्री रह चुका हो, उससे अलगाववादी बयानों की अपेक्षा नहीं की जा सकती.किंतु फारुक ने चुनाव जीतने के लिए वह सब किया जिससे अलगाववादियों, पत्थरबाजों सहित समस्त भारत विरोधियों के पक्ष का समर्थन हो. इस रवैये में प्रकारांतर से भारत विरोध भी निहित था. इसलिए यह प्रश्न भी हमें अपने-आपसे पूछना चाहिए कि क्या ऐसा व्यक्ति हमारी संसद का सदस्य होने की योग्यता रखता है जिसने चुनाव जीतने के लिए कश्मीर में भारत विरोधी रुख अपनाया हो?

हालांकि उनकी तुष्टिकरण की दुर्नीतियों से भी अलगाववादी और पत्थरबाज माने नहीं और चुनाव को इतना डरावना बना दिया कि बहुसंख्या में मतदाता मतदान के लिए निकले ही नहीं. बावजूद इसके फारुक अपनी भूल स्वीकारने को तैयार नहीं है.

---